Global Multidisciplinary Research Journal
A Peer Reviewed/Refereed Bi-Annual Research Journal of Multidisciplinary Researches
Volume 1 Issue 1 September 2016, pp. 43-47
ISSN: 2456-4583
Global Development Society
6, New Tilak Nagar, Firozabad-283203 (UP)

बौद्ध ग्रन्थ मिलिंदपन्हो में वर्णित शिक्षा का महत्व

डॉ. अमित कुमार कौशिक[1] एवं प्रीती वर्मा[2]

[1, 2]असिस्टेन्ट प्रोफेसर, शिक्षा संकाय, जी.एल.ए. विश्वविद्यालय, मथुरा

प्राप्ति- 17 अगस्त 2016, **संशोधन**- 18 अगस्त 2016, **स्वीकृति**- 20 अगस्त 2016

प्रस्तावना

शिक्षा मानव जीवन का एक अनिवार्य पक्ष है, जो उसे सुसंस्कृत बनाती है और सामाजिक जीवन से उसका तादात्म्य स्थापित करती है। मिलिंदपन्हो में तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था एवं गुरु-शिष्य सम्बन्ध पर प्रकाश डालने वाले महत्वपूर्ण संदर्भ ग्रन्थ उपलब्ध हैं। प्राचीन भारतीय व्यवस्था में, शिक्षा का प्रारंभ उपनयन संस्कार से किया गया था, जो द्विजों के लिए ही विदित था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्यों के विद्यारंभ का समय अलग-अलग था। मिलिंदपन्हो में नागसेन के सात वर्ष का हो जाने पर उनके पिता ने उनकी शिक्षा व्यवस्था की। इससे लगता है कि ब्राह्मण की शिक्षा जन्म के सातवें वर्ष में प्रारंभ होती थी।[1] मनु ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्यों के उपनयन संस्कार की आयु क्रमशः गर्भ के आठवें, ग्यारहवें और बारहवें वर्ष में निर्धारित की हैं।[2] शिक्षा के प्रति राज्य और जनसामान्य दोनों ही जागरुक थे और अपना-अपना योगदान करते थे। विभिन्न धर्माचार्यों ने शिक्षा मे रुचि ली थी और वे धार्मिक शिक्षा दिया करते थे। विद्यारंभ से पहले गुरु-दक्षिणा देने की परम्परा थी। तदुपरांत अध्ययन प्रारम्भ होता था। नागसेन की शिक्षा के लिए उनके पिता ने ब्राह्मण आचार्यों को एक सहस्त्र स्वर्णमुद्राएं दक्षिणा में दी थीं।[3]

मिलिंदपन्हो से तत्कालीन अध्येय विषयों का भी ज्ञान होता है। एक संदर्भ में उन्नीस विद्याओं[4] का उल्लेख किया गया है, जिनका अध्ययन किया जाता था-

(1) श्रुति (2) स्मृति (3) सांख्य (4) योग (5) न्याय (6) वैशेषिक (7) गणित (8) संगीत (9) वैद्यक (10) चारों वेद (11) सभी पुराण (12) इतिहास (13) ज्योतिष (14) मंत्र विद्या (15) तर्क (16) तंत्र (17) युद्ध विद्या (18) छंद और (19) सामुद्रिक।

सामाजिक संगठन के प्रत्येक वर्ग के लिए अलग-अलग कर्तव्यों का निर्धारण किया गया था। शिक्षा की व्यवस्था तदनुरूप की गई थी, जिससे सभी अपने अनुरूप निर्धारित कार्यों को सफलतापूर्वक कुशलता से सम्पन्न कर सके। क्षत्रियों को हाथी, घोडे, रथ, भाले और तीर चलाने की विद्या, लिखना पढ़ना, हिसाब-किताब देखना, छात्र धर्म का पालन करना, युद्ध एवं सैन्य संचालन की शिक्षा दी जाती थी।[5] ब्राह्मण को ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद,

अथर्ववेद, आयुर्वेद, इतिहास, पुराण, निघण्टु, कैटुभ, अक्षर, प्रभेद, पद, व्याकरण, ज्योतिष, शकुन विद्या, स्पप्न विद्या, निमिष विद्या, छह वेदांग, सूर्य और चन्द्र ग्रहण की विद्या, राहु के आकाश में आ जाने की फल विद्या, आकाश का गड़गड़ाना, नक्षत्रों के संयोग होने की विद्या, उल्कापात, भूकंप दिशा–दाह आकाश और पृथ्वी के लक्षणों को देखकर फल बताना, गणित, सामुद्रिक, कुषा, मृग, चूहा, मिश्रकोन्पाद तथा पक्षियों की बोली को समझ लेने की विद्या सिखायी जाती थी।[6] वैश्यों को और शूद्रों को किन विद्याओं की शिक्षा दी जाती थी इसका स्पष्ट उल्लेख मिलिंदपन्हो में नहीं मिलता, परन्तु वैश्यों, शूद्रों एवं अन्य लोगों का कार्य ग्रन्थ में कृषि, व्यापार, एवं पशुपालन बताया गया है। अतः संभावना की जा सकती है कि उन्हें तदनुरूप शिक्षा दी जाती होगी। प्राचीन भारत में शूद्रों के उपनयन संस्कार का निषेध किया गया था और उनके लिए शिक्षा की आवश्यकता नहीं समझी गई थी, परन्तु अध्येय समाज के विषय में इस तथ्य से सहमति नहीं व्यक्त की जा सकती। ऐसा प्रतीत होता है कि शूद्र भी अपने कार्य के अनुरूप शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। अधिकांश शिल्पी शूद्र थे, वे अवश्य ही व्यावसायिक कुशलता के लिए अनुभवी व्यक्तियों से प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे होंगे। नागसेन ने ब्राह्मण आचार्य से ब्राह्मण कुल की शिक्षा प्राप्त करने के क्रम में तीन वेदों का ज्ञान, शब्द ज्ञान, छंद ज्ञान, भाषा ज्ञान तथा इतिहास, पदों का ज्ञान, व्याकरण तथा लोकायत और महापुरुष लक्षण शास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया गया।[7]

साहित्यिक विकास या उस समय लिखे गए महत्वपूर्ण साहित्यिक ग्रन्थों के विषय में मिलिंदपन्हो में कुछ पता नहीं लगता। इस सम्बन्ध में कुछ बौद्ध ग्रन्थों का ही उल्लेख हुआ है परन्तु साहित्य कला के विकास का एक उत्कृष्ट उदाहरण स्वयं मिलिंदपन्हो के विभिन्न संदर्भों से कुशल लेखकों[8] के विवरण प्राप्त होते हैं। विवेचनात्मक ग्रन्थों के लिए इसकी गद्यबद्ध शैली कितनी उपयुक्त है इसका सम्यक अनुमापन नहीं किया जा सकता। मिलिंदपन्हो के विभिन्न संदर्भों से कुशल लेखकों के विवरण प्राप्त होते हैं जो शब्द, छंद, पद और भाषा के आधार पर लेखन कार्य में दक्षता प्राप्त करते थे और इसी से जीवनयापन कर रहे थे।

ऐसा प्रतीत होता है कि सीमित रूप में व्यावसायिक शिक्षा आरंभ हो चुका था। विभिन्न शिल्पों को कुशल गुरु से सीखने, पढ़ने और उसमें दक्षता प्राप्त करने का उल्लेख मिलिंदपन्हो[9] में प्राप्त होता है। शिल्पकार प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए गुरु की सेवा और उनका सम्मान करते थे। गुरु को प्रणाम करना, उठकर स्वागत करना, उनके लिए पीने का पानी लाना, घर में झाड़ू लगाना दातवन काट कर लाना, मुँह धोने के लिए पानी लाना, इत्यादि कार्य गुरु के प्रति उनके कर्तव्य समझे जाते थे। उनके सभी कार्य गुरु की इच्छानुसार संचालित होते थे। कला सीखने के लिए शिल्पी किसी भी विद्यार्थी के समान कठोर विस्तर पर सोते थे और रुखा–सूखा खाकर जीवन निर्वाह करते थे।[10] इन कठिनाईयों के होने पर भी वे विभिन्न कलाओं को सीखकर उनका आनन्द लेते थे।[11]

सामाजिक संगठनों का आधार होता है – विभिन्न व्यक्तियों का पारस्परिक सम्बन्ध। इन सम्बन्धों के अनेक रूप होते हैं, जिनमें से सभी मानवीय जीवन के अनिवार्य और महत्वपूर्ण अंग हैं, परन्तु इनमें गुरु–शिष्य सम्बन्ध सर्वाधिक विशिष्ट और सर्वदा आदरणीय है। इस सम्बन्ध की भारतीय अवधारणा बहुत उत्कृष्ट है। मिलिंदपन्हो में भी इस सम्बन्ध को विभिन्न संदर्भों के माध्यम से स्पष्ट किया गया है। इस विशिष्टतम सम्बन्ध का अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण पक्ष अर्थात् शिक्षक, शिष्य के प्रति महान उत्तरदायित्व की संभावना से प्रेरित होता था। मिलिंदपन्हो में योग्य आचार्य के पच्चीस गुण[12] बताए गए हैं –

1. आचार्य को शिष्य के विषय में सदैव पूरा ध्यान रखना चाहिए।
2. कर्तव्य और अकर्तव्य का सदा उपदेश देते रहना चाहिए।

3. किसमें सावधान रहें और किसमें नहीं इसका उपदेश देते रहना चाहिए।
4. उसके शयन आदि के विषय में ध्यान रखना चाहिए।
5. बीमार पड़ने पर ध्यान रखना चाहिए।
6. उसने भोजन में क्या प्राप्त किया है और क्या नहीं इसका भी ध्यान रखना चाहिए।
7. उसके विशेष चरित्र (स्वभाव) को जानना चाहिए।
8. भिक्षा-पात्र में क्या प्राप्त किया है और क्या नहीं इसका भी ध्यान रखना चाहिए।
9. उसे सदा उत्साह देते रहना चाहिए। घबराओ नहीं इस बात को तुरंत समझ लोगे।
10. इस व्यक्ति के साथ रह सकते हो। ऐसा बता देना चाहिए।
11. इस गाँव में जा सकते हो। ऐसा बता देना चाहिए।
12. इस विहार में जा सकते हो। ऐसा बता देना चाहिए।
13. उसके साथ गप्पें नहीं मारनी चाहिए।
14. उसके दोषों को क्षमा कर देना चाहिए।
15. पूरे उत्साह के साथ सिखाना चाहिए।
16. बिना किसी अवकाश के पढ़ना चाहिए।
17. उसे सब कुछ बिना छिपाए हुए बता देना चाहिए।
18. विद्या से इसको पुनः जन्म दे रहा हूँ। ऐसा विचार कर उसके प्रति पुत्रवत् स्नेह रखना चाहिए।
19. वह अपने उद्देश्य से न फिसलने पावे ऐसा यत्न करना चाहिए।
20. इसे सभी शिक्षाओं को देकर बड़ा बना रहा हूँ ऐसा ध्यान रखना चाहिए।
21. उसके साथ मैत्री भाव रखना चाहिए।
22. आपत्ति पड़ने पर उसे छोड़ना नहीं चाहिए।
23. सिखाने योग्य बातों को सिखाने में कभी चूक नहीं करनी चाहिए।
24. धर्म से गिरते देख उसकी रक्षा करनी चाहिए।

सामाजिक उन्नति के लिए आचार्य के कुल आदर्श गुणों की परिकल्पना प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक मान्यताओं के अनुरूप ही हैं। जहाँ आचार्यों में विशिष्ट गुण अपेक्षित थे वहीं विद्यार्थियों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे विद्याध्ययन के प्रति गंभीर एवं ज्ञान प्राप्ति की उत्कृष्ट अभिलाषा से प्रेरित होंगे। मनु कहते हैं कि जो गंभीर नहीं है, जिनमें ज्ञान प्राप्ति की आकांक्षा और उन्नति की चाह नहीं है, ऐसे विद्यार्थियों पर समय नष्ट करना व्यर्थ है। याज्ञवल्क्य के अनुसार वेद शास्त्र को एक बार पढ़कर विस्मृत कर देना ब्रह्म हत्या के समान पाप है।[13] प्राचीन भारत में जिस प्रकार पिता का पुत्र पर पूर्ण अधिकार माना जाता था उसी प्रकार अध्यापक का भी, क्योंकि वह उसकी आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त करता था, और विद्या के द्वारा उसे नया जन्म देता था।[14] शिष्य भी गुरु को पितृवत् सम्मान देता था। ब्रह्मचारी को अपना अध्ययन एवं गुरु के हितकारक कार्यों को करने का निर्देश दिया गया है।[15] उससे आशा की जाती थी कि वह अध्ययन के समय और उसके बाद भी गुरु का विश्वास पात्र रहेगा। मिलिंदपन्हो के अनुसार राजकुमार गुरु से सभी विद्याओं का अध्ययन करने बाद जब उचित समय पर गद्दी प्राप्त

कर लेता था तब भी आचार्य को प्रणाम करता था और उठकर उसका स्वागत करता था।[16] इस प्रकार गुरु के प्रति सम्मान ज्ञापित करता था।

तत्कालीन समाज में धार्मिक शिक्षा की भी व्यवस्था की गई थी मिलिंदपन्हो में बौद्ध विहारों में दी जाने वाली संघ शिक्षा के संबंध में बहुत से संदर्भ प्राप्त होते हैं। भिक्षु विहारों में गुणी एवं विद्वान आचार्यों से शिक्षा प्राप्त करते थे। विहारों में शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रवृजित होना आवश्यक था।[17] 'पब्बजाग्रहण' (प्रवृत्याग्रहण) से ही उपासक जीवन प्रारम्भ होता था। प्रवृजित होने के लिए माता–पिता की अनुमति आवश्यक मानी गई थी।[18] बौद्ध भिक्षु त्रिपिटकों (विनय पिटिक, सूत्र पिटिक, और अभिधम्भ पिटिक)[19] का अध्ययन करते थे। एक बार सीखी गई बात का स्मरण रखना आवश्यक माना गया था। कुशल और ज्ञानी श्रामणेर को पहले अभिधर्म की शिक्षा दी जाती थी परन्तु सामान्यत: पहले विनय और सूत्र की शिक्षा दी जाती थी।[20] मिलिंदपन्हो में अभिधम्म की सात पुस्तकों[21] का उल्लेख है–

1. धम्मसंगणि – कुशल, अकुशल, और व्याकृत (पुण्य, पाप और न पुण्य न पाप) धर्मों को तीन प्रकार और दो प्रकार के भेद से बताने वाली अभिधर्म की पहली पुस्तक।
2. विभंगप्यकरण – स्कंन्धविभंग इत्यादि अट्टारह विभंगों वाली दूसरी पुस्तक।
3. धातुकथाप्यकरण – संग्रह, असंग्रह, इत्यादि चौदह प्रकार से बंटी हुई तीसरी पुस्तक।
4. पुग्गल त्रति – स्कन्धप्रज्ञप्ति आयतन प्रज्ञप्ति, इत्यादि छ: प्रकार से बंटी चौथी पुस्तक।
5. कथावत्थुपकरण – अपने पक्ष में पाँच सौ सूत्र और विपक्ष में पाँच सौ सूत्र, इन्हीं एक हजार सूत्रों की पाँचवीं पुस्तक।
6. यमकप्पकरण – मूल यमक, स्कन्धयमक, इत्यादि दस प्रकार की से बंटी छठी पुस्तक।
7. पट्ठनप्पकरण – हेतु प्रत्यय इत्यादि चौबीस प्रकार से बंटी सातवीं पुस्तक।

इनका अध्ययन श्रामणेर को कराया जाता था। प्रवृजित को करुणा, मुदिता और अपेक्षा भावनाओं का अभ्यास करना पड़ता था। मिलिंदपन्हो में दस गुणों[22] का उल्लेख किया गया है। उपासकत्व की समाप्ति पर बौद्ध भिक्षु के लिए उपसंपदा संस्कार की नियोजना की जाती थी।

मिलिंदपन्हो से ज्ञात होता है कि गुरु को प्रणाम करना, उसके विषय में अनुचित शंका न करना, परिवेश में झाड़ू देना, गुरु के मुँह धोने के लिए पानी ओ दतुवन उचित स्थान पर रखना शिष्य या श्रामणेर का कर्तव्य था।[23]

इस प्रकार संघ शिक्षा में भी गुरु और शिष्य के बीच गहरा संबंध होता था। शिक्षा के माध्यम से शिष्य की आत्मिक उन्नति का प्रयत्न किया जाता था और संघ जीवन को व्यवस्थित रूप से चलाने के लिए नियमों की शिक्षा दी जाती थी। यह शिक्षा प्रवृजित होने पर सभी को बिना किसी भेदभाव के दी जाती थी।

सन्दर्भ सूची

1. मिलिंदपन्हो, I. 1.8. पृ. 7।
2. मनुस्मृति II .36।
3. मिलिंदपन्हो, 1.1.8. पृ. 7 अथ खों सोणुत्तरो ब्राह्मणों आचरिय ब्राह्मणस्य, आचरिय ब्राह्मणस्य आचरियभागं सहस्संदत्वा अन्तों पासादे एकस्मिं गब्भे एकतों मन्चकं पन्नपेत्वा आचरिय ब्राह्मणं एतदवोच सझोपेहि खे त्वं, ब्राह्मण, इमं दारकं मन्तानी ति।

4. तदैव, I 1.1.पृ. 2.-3 बहूनि चस्स सत्थानि उग्गहितानि होन्ति (सेयत्थीद ं- सुति, सम्मुति, संख्या, योगो, नीति, विसेसिका, गणिका, गन्ध्ब्बा, तिकिच्छा, चतुब्बेदा, पुराणा, इतिहासा, जोतिसा, माया, केतु मन्तना, युद्धा, छन्दसा, बुद्धबचनेनएकूनवीसति।
5. तदैव, चतुर्थ 3.7, पृ. 132।
6. तदैव
7. तदैव, I, 1.8, पृ. 7।
8. तदैव, द्वितीय 2.3. पृ. 33; तृतीय. 5.3 पृ. 57।
9. तदैव, तृतीय 6.11. पृ. 63; V 3.9 पृ. 224
10. तदैव, पंचम 3.9, पृ. 224, 'किस्म पन ते, महाराज, आचरियानं अभिवादन पुच्चुट्ठोनेन उदका - हरणघरसम्मज्जनदन्तकट्ठमुखोदकानुप्पदानेन उच्चिट्ठप्पटिग्गहण उच्छददननहापनपादपरि-कम्मेन सकचितं निक्खिपित्वा परिचितानुवत्तनेनदुक्यसेयाय विसमभोजनेन कायं आतापेन्ती ति?...'।
11. तदैव, 'आम भत्ते, अत्थि आचरियानं सिप्पवन्तान् सिप्पसूखं ति'।
12. तदैव, चतुर्थ 5, पृ. 76।
13. याज्ञवल्क्य स्मुति तृतीय 228।
14. मिलिंदपन्हो, चतुर्थ 3.1., पृ. 76।
15. मनुस्मृति, द्वितीय 66।
16. मिलिंदपन्हो, चतुर्थ 3.1., पृ. 123; पृ. 224।
17. तदैव, I,1.9, पृ. 9।
18. तदैव
19. तदैव, I,1.1, पृ.1।
20. तदैव, I,1.10., पृ. 9।
21. तदैव
22. तदैव, I,1.11., पृ. 10।
23. तदैव, I,1.11., पृ. 11।

❐❐❐